षडावश्यकों के क्रम का औचित्य

श्री पारसमल चण्डालिया

कार्य-कारण भाव के नियम पर आधारित षडावश्यक का क्रम पूर्णतः वैज्ञानिक है। षडावश्यक के स्वरूप और फल की विस्तृत चर्चा प्रस्तुत लेख में करते हुए इनके क्रम पर भी समीचीन प्रकाश डाला गया है। आत्मशुद्धिकारक प्रतिक्रमण श्रावक और श्रमण दोनों के लिए अत्यावश्यक है। *-सम्पादक*

प्रतिक्रमण में षडावश्यक का जो क्रम रखा गया है, वह कार्य-कारण भाव की शृंखला पर अवस्थित है तथा पूर्ण वैज्ञानिक है। साधक के लिए सर्वप्रथम समता को प्राप्त करना आवश्यक है। बिना समता को अपनाए सद्गुणों के सरस सुमन खिलते नहीं और अवगुणों के काँटे झड़ते नहीं। जब अंतर्हृदय में विषम भाव की ज्वालाएँ धधक रही हों तब वीतरागी महापुरुषों के गुणों का उत्कीर्त्तन किस प्रकार किया जा सकता है? समत्व को जीवन में धारण करने वाला व्यक्ति ही महापुरुषों के गुणों का संकीर्तन करता है और उनके उदात्त गुणों को जीवन में उतारता है। इसीलिए सामायिक आवश्यक के बाद चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक रखा गया है। जब गुणों को व्यक्ति हृदय में धारण करता है तभी उसका सिर महापुरुषों के चरणों में झुकता है। भक्ति-भावना से विभोर होकर वह उन्हें वंदन करता है, इसीलिए तृतीय आवश्यक 'वंदन' है। वंदन करने वाले साधक का हृदय सरल होता है। सरल व्यक्ति ही कृत दोषों की आलोचना करता है, अतः वंदन के पश्चात् प्रतिक्रमण आवश्यक का निरूपण है। भूलों को स्मरण कर उन भूलों से मुक्ति पाने के लिए तन एवं मन में स्थिरता आवश्यक है। कायोत्सर्ग से तन एवं मन की एकाग्रता की जाती है और स्थिरवृत्ति का अभ्यास किया जाता है। जब तन और मन स्थिर होता है तभी प्रत्याख्यान किया जा सकता है। मन डांवाडोल हो तब प्रत्याख्यान संभव नहीं है इसीलिए प्रत्याख्यान आवश्यक का स्थान छठा रखा गया है। इस प्रकार यह षडावश्यक रूप प्रतिक्रमण आत्म-निरीक्षण, आत्मपरीक्षण और आत्मोत्कर्ष का श्रेष्ठतम उपाय है।

षडावश्यक स्वरूप, फल और क्रम औचित्य

आत्मा को निर्मल अर्थात् कर्म-मल रहित बनाने के लिए प्रतिक्रमण करना आवश्यक है। इसीलिए प्रतिक्रमण को 'आवश्यक' जैसा सार्थक नाम दिया गया है। पाप-निवृत्ति रूप प्रतिक्रमण के छह आवश्यक हैं। इन छह आवश्यकों के क्रम के औचित्य के साथ विस्तृत स्वरूप इस प्रकार है -

१. प्रथम आवश्यक सामायिक - छह आवश्यकों में सामायिक आवश्यक को प्रथम स्थान दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समभाव की प्राप्ति होना अर्थात् राग-द्वेष रहित माध्यस्थ भाव 'सामायिक' है। ममत्व भाव के कारण आत्मा अनादिकाल से चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण कर रही है। ऐसी आत्मा को समभाव में रमण कराने के लिए सावद्य योगों से निवृत्ति आवश्यक है, जो कि सामायिक से संभव है। आत्मोत्थान के लिए सामायिक मुख्य प्रयोग है, मोक्ष प्राप्त करने का उपाय है। समस्त धार्मिक क्रियाओं के लिए आधारभूत होने से ही सामायिक को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है।

सामायिक अर्थात् आत्म-स्वरूप में रमण करना, सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में तल्लीन होना। सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ही मोक्ष मार्ग है। मोक्षमार्ग में सामायिक मुख्य है यह बताने के लिए ही सामायिक आवश्यक को सबसे प्रथम रखा गया है।

अपने शुद्ध स्वरूप में रहा हुआ आत्मा ही सामायिक है। शुद्ध, बुद्ध, मुक्त चिदानंद स्वरूप आत्मतत्त्व की प्राप्ति करना ही सामायिक का प्रयोजन है।[1] मैं कौन हूँ? मेरा स्वरूप कैसा है? आदि विचारने में तल्लीन होना, आत्म गवेषणा करना सामायिक है।

सच्चा सामायिक व्रत क्या है? इसकी परिभाषा बताते हुए कहा है- जिसकी आत्मा संयम, नियम और तप में तल्लीन है उसी का सामायिक व्रत है, ऐसा केवल ज्ञानियों ने फरमाया है।

जो त्रस और स्थावर सभी जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है, सभी प्राणियों पर समभाव रखता है, उसी का सच्चा सामायिक व्रत है, ऐसा केवलज्ञानियों ने फरमाया है।[2]

सामायिक के आध्यात्मिक फल के लिए गौतम स्वामी प्रभु महावीर स्वामी से पूछते हैं कि -

हे भगवन्! सामायिक करने से जीव को क्या लाभ होता है?

भगवान् ने फरमाया - सामायिक करने से सावद्य योग से निवृत्ति होती है।[3] अर्थात् पाप कर्मों से सम्पूर्ण निवृत्ति होने पर आत्मा पूर्ण विशुद्ध और निर्मल बन जाती है यानी मोक्ष पद को प्राप्त कर लेती है।

सामायिक की साधना उत्कृष्ट है। सामायिक के बिना आत्मा का पूर्ण विकास असंभव है। सभी धार्मिक साधनाओं के मूल में सामायिक रही हुई है। समता भाव की दृष्टि से ही सामायिक आवश्यक को प्रथम स्थान प्राप्त है।

२. दूसरा आवश्यक : चउवीसत्थव- प्रथम सामायिक आवश्यक के बाद दूसरा आवश्यक है - चतुर्विंशतिस्तव। सावद्ययोग से विरति सामायिक आवश्यक है। सावद्य योग से निवृत्ति प्राप्त करने के लिए जीवन को राग-द्वेष रहित अर्थात् समभाव युक्त विशुद्ध बनाने के लिए साधक को सर्वोत्कृष्ट जीवन वाले महापुरुषों के आलम्बन की आवश्यकता रहती है। चौबीस तीर्थंकर जो रागद्वेष रहित समभाव में स्थित वीतराग पुरुष हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं, त्याग, वैराग्य और संयम-साधना के महान् आदर्श हैं, उनकी स्तुति करना उनके गुणों का कीर्तन करना 'चतुर्विंशतिस्तव' कहलाता है।

तीर्थंकरों, वीतराग देवों की स्तुति करने से साधक को महान् आध्यात्मिक बल व आदर्श जीवन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेरणा मिलती है, अहंकार का नाश होता है, गुणों के प्रति अनुराग बढ़ता है और साधना का मार्ग प्रशस्त बनता है। शुभ भावों से दर्शन विशुद्धि होती है और दर्शन-विशुद्धि से आत्मा कर्म-मल से रहित होकर शुद्ध निर्मल हो जाती है, परमात्म पद को प्राप्त कर लेती है और वीतराग प्रभु के समान बन जाती है।

चतुर्विंशतिस्तव के फल के लिए उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९ में पृच्छा की है -

"हे भगवन्! चतुर्विंशतिस्तव से आत्मा को किस फल की प्राप्ति होती है?"

भगवान् ने कहा- "हे गौतम! चतुर्विंशतिस्तव से दर्शन-विशुद्धि होती है।"[४]

समभाव में स्थित आत्मा ही वीतराग प्रभु के गुणों को जान सकता है, उनकी प्रशंसा कर सकता है। अर्थात् जब सामायिक की प्राप्ति हो जाती है तब ही भाव पूर्वक तीर्थंकरों की स्तुति की जा सकती है। अतएव सामायिक आवश्यक के बाद चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक रखा गया है।

३. तीसरा आवश्यक : वंदन - चतुर्विंशतिस्तव नामक दूसरे आवश्यक में तीर्थंकर देवों की स्तुति की गयी है। देव के बाद दूसरा स्थान गुरु का ही है। तीर्थंकर भगवंतों द्वारा प्ररूपित धर्म का उपदेश निर्ग्रन्थ मुनिराज ही देते हैं। तीसरे वंदना आवश्यक में गुरुदेव को वंदन किया जाता है।

मन, वचन, और काया का वह शुभ व्यापार जिसके द्वारा गुरुदेव के प्रति भक्ति और बहुमान प्रकट किया जाता है 'वंदन' कहलाता है।

जो साधु द्रव्य और भाव से चरित्र सम्पन्न हैं तथा जिनेश्वर भगवान् के बताए हुए मार्ग पर चलते हुए जिन-प्रवचन का उपदेश देते हैं, वे ही सुगुरु हैं। आध्यात्मिक साधना में सदैव रत रहने वाले त्यागी-वैरागी शुद्धाचारी संयमनिष्ठ सुसाधु ही वंदनीय पूजनीय होते हैं। ऐसे सुसाधु-गुरु भगवन्तों को भावयुक्त उपयोग पूर्वक निःस्वार्थ भाव से किया हुआ वंदन कर्म-निर्जरा और अंत में मोक्ष का कारण बनता है।

इसके विपरीत भाव चारित्र से ही द्रव्यलिंगी-कुसाधु अवंदनीय होते हैं। संयमभ्रष्ट वेशधारी कुसाधुओं को वंदन करने से कर्म-निर्जरा नहीं होती, अपितु वह कर्म-बंधन का कारण बनता है।

सुगुरुओं को यथाविधि वंदन करने से विनय की प्राप्ति होती है। अहंकार का नाश होता है। वंदनीय में रहे हुए गुणों के प्रति आदर भाव होता है। तीर्थंकर भगवन्तों की आज्ञा का पालन होता है। वंदना करने का मूल उद्देश्य ही नम्रता प्राप्त करना है। नम्रता अर्थात् विनय ही जिनशासन का मूल है।

उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन २९ में गौतम स्वामी प्रभु भगवान् महावीर से पूछते हैं कि - "हे भगवन्! वंदन करने से जीव को क्या लाभ होता है?"[५]

उत्तर में भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि - "वंदन करने से यह आत्मा नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है, उच्चगोत्र का बंध करता है। उसे सुभग, सुस्वर आदि सौभाग्य की प्राप्ति होती है, सभी उसकी आज्ञा स्वीकार करते हैं और वही दाक्षिण्य भाव, कुशलता एवं सर्वप्रियता को प्राप्त करता है।"

जो व्यक्ति अपने इष्ट देव तीर्थंकर भगवंतों की स्तुति करता है, गुण-स्मरण करता है वही तीर्थंकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् के बताए हुए मार्ग पर चलने वाले, जिनवाणी का उपदेश देने वाले गुरुओं को यथाविधि भक्तिभावपूर्वक वंदन-नमस्कार कर सकता है। अतएव चतुर्विंशतिस्तव के बाद वंदना आवश्यक को स्थान दिया गया है।

४. चौथा आवश्यक : प्रतिक्रमण- छह आवश्यकों में प्रतिक्रमण चौथा आवश्यक है। आजकल 'आवश्यक' की संज्ञा प्रतिक्रमण प्रचलित है। इसके कई कारण हो सकते हैं। प्रतिक्रमण चतुर्थ आवश्यक है और सब आवश्यकों में अक्षर प्रमाण में बड़ा है। अतः सभी आवश्यकों को प्रतिक्रमण नाम से पुकारा जाने लगा हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। दूसरा कारण श्रमण भगवान् महावीर का सप्रतिक्रमण धर्म है। अतः प्रतिदिन प्रातः सायं, प्रतिक्रमण करना साधक के लिए आवश्यकीय है अर्थात् सायं-प्रातः प्रतिक्रमण 'आवश्यक' का नियत काल है। अन्य आवश्यक प्रतिक्रमण आवश्यक की पूर्व भूमिका एवं उत्तरक्रिया के रूप में ही प्रायः होते हैं। इसलिए सभी आवश्यकों को 'प्रतिक्रमण' नाम हो जाना सहज लगता है।

वंदना आवश्यक के पश्चात् प्रतिक्रमण को रखने का आशय यह है कि जो राग-द्वेष रहित समभावों से गुरुदेवों की स्तुति करने वाले हैं वे ही गुरुदेव की साक्षी से अपने पापों की आलोचना कर सकते हैं, प्रतिक्रमण कर सकते हैं। जो गुरुदेव को वंदन ही नहीं करेगा, वह किस प्रकार गुरुदेव के प्रति बहुमान रखेगा और अपना हृदय स्पष्टतया खोल कर कृत पापों की आलोचना करेगा? जो पाप मन से, वचन से और काया से स्वयं किये जाते हैं, दूसरों से कराये जाते हैं और दूसरों के द्वारा किए हुए पापों का अनुमोदन किया जाता है उन सब पापों की निवृत्ति के लिए कृत पापों की आलोचना करना, निन्दा करना प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण करने से आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में आती है।

व्रत में लगे हुए दोषों की सरल भावों से प्रतिक्रमण द्वारा शुद्धि करना और भविष्य में उन दोषों का सेवन न करने के लिए सतत जागरूक रहना ही प्रतिक्रमण का वास्तविक उद्देश्य है। प्रतिक्रमण का लाभ बताते हुए उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९ में पृच्छा की है कि - "हे भगवन्! प्रतिक्रमण करने से जीव को क्या लाभ होता है?"[५]

भगवान् ने कहा- "हे गौतम! प्रतिक्रमण करने वाला व्रतों में उत्पन्न हुए छिद्रों को बंद करता है। फिर व्रतों के दोषों से निवृत्त बना हुआ शुद्ध व्रतधारी जीव आस्रवों को रोक कर तथा शबलादि दोषों से रहित शुद्ध संयम वाला होकर आठ प्रवचन माताओं में सावधान होता है और संयम में तल्लीन रहता हुआ समाधिपूर्वक अपनी इन्द्रियों को असन्मार्ग से हटा कर संयममार्ग में विचरण करता है अर्थात् आत्मा के संयम के साथ एकमेक हो जाता है। जो इन्द्रियाँ बाह्योन्मुखी हैं, वे अन्तर्मुखी हो जाती हैं। इन्द्रियाँ मन में लीन हो जाती हैं और मन आत्मा में रम जाता है। इस प्रकार प्रतिक्रमण जो वापस लौटने की प्रक्रिया से चालू हुआ था, वह धीरे-धीरे आत्म-स्वरूप की स्थिति में पहुँच जाता है। यही है प्रतिक्रमण का पूर्ण फल। प्रतिक्रमण की यही है उपलब्धि।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. पाँचवाँ आवश्यक : कायोत्सर्ग- छह आवश्यकों में कायोत्सर्ग पाँचवाँ आवश्यक है। कायोत्सर्ग में दो शब्द हैं - काय और उत्सर्ग। जिसका अर्थ है -काय का त्याग अर्थात् शरीर के ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है। प्रतिक्रमण आवश्यक के बाद कायोत्सर्ग का स्थान है। प्रतिक्रमण के द्वारा व्रतों के अतिचार रूप छिद्रों को बंद कर देने वाला, पश्चात्ताप के द्वारा पाप कर्मों की निवृत्ति करने वाला साधक ही कायोत्सर्ग की योग्यता प्राप्त कर सकता है। जब तक प्रतिक्रमण के द्वारा पापों की आलोचना करके चित्त शुद्धि न किया जाय, तब तक धर्मध्यान या शुक्लध्यान के लिए एकाग्रता संपादन करने का, जो कायोत्सर्ग का उद्देश्य है, वह किसी तरह भी सिद्ध नहीं हो सकता। अनाभोग आदि से लगने वाले अतिचारों की अपेक्षा अविवेक, असावधानी आदि से लगे बड़े अतिचारों की कायोत्सर्ग शुद्धि करता है। इसीलिए कायोत्सर्ग को पाँचवाँ स्थान दिया गया है।

कायोत्सर्ग एक प्रकार का प्रायश्चित्त है। वह पुराने पापों को धोकर साफ कर देता है। 'तस्सउत्तरी' के पाठ (उत्तरीकरण का पाठ) में यही कहा है कि पापयुक्त आत्मा को श्रेष्ठ उत्कृष्ट बनाने के लिए, प्रायश्चित्त करने के लिये, विशेष शुद्धि करने के लिए, शल्यों का त्याग करने के लिए, पाप कर्मों का नाश करने के लिए कायोत्सर्ग में शरीर के व्यापारों का त्याग किया जाता है।

अनुयोगद्वार सूत्र में कायोत्सर्ग आवश्यक का नाम 'व्रण-चिकित्सा' कहा है। व्रत रूप शरीर में अतिचार रूप व्रण (घाव, फोड़े) के लिए पाँचवाँ कायोत्सर्ग आवश्यक चिकित्सा रूप पुल्टिस (मरहम) का काम करता है। जैसे पुल्टिस, फोड़े के बिगड़े हुए रक्त को मवाद बना कर निकाल देता है और फोड़े की पीड़ा को शान्त कर देता है उसी प्रकार यह काउस्सग्ग रूप पाँचवाँ आवश्यक, व्रत में लगे हुए अतिचारों के दोषों को दूर कर आत्मा को निर्मल एवं शांत बना देता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में कायोत्सर्ग का फल इस प्रकार कहा है- "हे भगवन्! कायोत्सर्ग करने से जीव को किन गुणों की प्राप्ति होती है?"

इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं - "कायोत्सर्ग करने से भूतकाल और वर्तमान काल के दोषों का प्रायश्चित्त करके जीव शुद्ध बनता है और जिस प्रकार बोझ उतर जाने से मजदूर सुखी होता है उसी प्रकार प्रायश्चित्त से विशुद्ध बना हुआ जीव शान्त हृदय बन कर शुभ ध्यान ध्याता हुआ सुखपूर्वक विचरता है।"

६. छठा आवश्यक : प्रत्याख्यान- छह आवश्यकों में प्रत्याख्यान छठा आवश्यक है। प्रत्याख्यान का सामान्य अर्थ है - त्याग करना। प्रत्याख्यान में तीन शब्द है - प्रति+आ+ख्यान। अविरति एवं असंयम के प्रति अर्थात् प्रतिकूल रूप में 'आ' अर्थात् मर्यादा स्वरूप आकार के साथ, 'ख्यान' अर्थात् प्रतिज्ञा को 'प्रत्याख्यान' कहते हैं। अथवा अमुक समय के लिए पहले से ही किसी वस्तु के त्याग कर देने को 'प्रत्याख्यान' कहते हैं। अविवेक आदि से लगने वाले अतिचारों की अपेक्षा जानते हुए दर्प आदि से लगे बड़े अतिचारों की शुद्धि प्रत्याख्यान करता है, अतः प्रत्याख्यान को छठा स्थान दिया गया है। अथवा प्रतिक्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और कायोत्सर्ग के द्वारा अतिचार की शुद्धि हो जाने पर प्रत्याख्यान द्वारा तप रूप नया लाभ होता है।

जो साधक कायोत्सर्ग द्वारा विशेष चित्त-शुद्धि, एकाग्रता और आत्म बल प्राप्त करता है, वही प्रत्याख्यान का सच्चा अधिकारी है। अर्थात् प्रत्याख्यान के लिए विशिष्ट चित्त शुद्धि और विशेष उत्साह की अपेक्षा है। जो कायोत्सर्ग के बिना संभव नहीं है। अतः कायोत्सर्ग के पश्चात् प्रत्याख्यान को स्थान दिया गया है।

अनुयोगद्वार सूत्र में प्रत्याख्यान का नाम 'गुणधारण' कहा है। गुणधारण का अर्थ है - व्रत रूप गुणों को धारण करना। प्रत्याख्यान के द्वारा साधक मन, वचन, काया को दुष्ट प्रवृत्तियों से रोक कर शुभ प्रवृत्तियों पर केन्द्रित करता है। ऐसा करने से इच्छा-निरोध, तृष्णा का अभाव, सुखशांति आदि अनेक सद्गुणों की प्राप्ति होती है।

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में प्रत्याख्यान का फल इस प्रकार बताया है- "हे भगवन्! प्रत्याख्यान से जीव को क्या लाभ है?"

इसके उत्तर में प्रभु फरमाते हैं कि- "प्रत्याख्यान करने से आस्रवद्वारों का निरोध होता है, प्रत्याख्यान करने से इच्छा का निरोध होता है, इच्छा का निरोध होने से जीव सभी पदार्थों में तृष्णा रहित बना हुआ परम शांति से विचरता है।"

इस प्रकार षडावश्यक साधक के लिए अवश्य करणीय हैं। साधक चाहे वह श्रावक हो अथवा श्रमण, वह इन क्रियाओं को करता ही है। षडावश्यकों का साधक के जीवन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रतिक्रमण के इन छह आवश्यकों से जहाँ आध्यात्मिक शुद्धि होती है, वहाँ लौकिक जीवन में भी समता, नम्रता, क्षमाभाव आदि सद्गुणों की वृद्धि होने से आनंद के निर्मल निर्झर बहने लगते हैं।

ग्रहण किए हुए व्रतों में प्रमादवश या अनजानेपने में दोष लगने की संभावना रहती है। जब तक दोषों को दूर नहीं किया जाता तब तक आत्मा शुद्ध नहीं बनती। आवश्यक (प्रतिक्रमण) के द्वारा दोषों की आलोचना की जाती है, आत्मा को अशुभ भावों से हटाकर शुभ भावों की तरफ ले जाया जाता है। प्रतिक्रमण के माध्यम से ही साधक अपनी भटकी हुई आत्मा को स्थिर करता है। भूलों को ध्यान में लाता है और मन, वचन, काया के पश्चात्ताप की अग्नि में आत्मा को निखारता है। आत्म-शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य- ये पाँच आचार कहलाते हैं। पंचाचार की शुद्धि के लिए भी प्रतिक्रमण आवश्यक है।

कर्म-बन्धन से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि जीव पूर्वकृत कर्मों का क्षय करे और नवीन कर्मों का बंध नहीं करे। प्रतिक्रमण द्वारा पूर्वकृत पापों को निंदा की जाती है, आलोचना की जाती है और मन, वचन, काया से प्रायश्चित्त (पश्चात्ताप) किया जाता है। अतः कर्मों की निर्जरा होती है और भविष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में कर्म बंधन रुकता है। प्रतिक्रमण से 'छूटूं पिछला पाप से नवां न बांधूं कोय' यह उक्ति सिद्ध होती है। अतः प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्रतिक्रमण तीसरे वैद्य की औषधि के समान है, जिसका प्रतिदिन सेवन करने से विद्यमान रोग शांत हो जाते हैं, रोग नहीं होने पर उस औषधि के प्रभाव से वर्ण, रूप, यौवन और लावण्य आदि में वृद्धि होती है और भविष्य में रोग नहीं होते। इसी तरह यदि दोष लगे हों तो प्रतिक्रमण द्वारा उनकी शुद्धि हो जाती है और दोष नहीं लगा हो तो प्रतिक्रमण चारित्र की विशेष शुद्धि करता है। इसलिए प्रतिक्रमण सभी के लिए समान रूप से आवश्यक है।

संदर्भ-

१. आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे। -भगवती सूत्र शतक १, उद्देशक ९

२. जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे। तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं।। जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य। तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं।।

-अनुयोगद्वार सूत्र

३. सामाइएणं भंते! जीवे किं जणयइ? सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ।।

-उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९

४. चउव्वीसत्थएणं भंते! जीवे किं जणयइ? चउव्वीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ।।

-उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९

५. वंदएणं भंते! जीवे किं जणयइ? वंदएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ उच्चागोयं निबंधइ सोहग्गं च ण अप्पडिहयं आणाफलं निवत्तेइ, दाहिणभाव च णं जणयइ।

-उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९

६. पडिक्कमणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? पडिक्कमणेणं वयच्छिदाइं पिहेइ, पिहियवयच्छिद्दे पुण जीवे णिरुद्धासवे असबलचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ। -उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९

७. काउस्सग्गेणं भंते! जीवे किं जणयइ? काउस्सग्गेणं तीयपडुप्पण्णं पायच्छित्तं विसोहेइ विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे णिव्वुयहियए ओहरिय भरुव्व भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहं सुहेणं विहरइ। -उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९

८. पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं णिरुंभइ, पच्चक्खाणेणं इच्छा णिरोहं जणयइ, इच्छाणिरोहं गए य णं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ। -उत्तराध्ययन सूत्र अ. २९

-म.नं. ७ गली नं. १४, उत्तरी नेहरू नगर, विट्ठलबस्ती,

बंगाली मिठाई के सामने, ब्यावर-३०५९०१ (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org